सबला

वर्ष 9 : अंक 1 जागोरी, नई दिल्ली अप्रैल-मई 1997

JAGORI
जागोरी

संपादक समूह
शारदा जैन
कमला भसीन
वीणा शिवपुरी
जुही जैन
सुनीता ठाकुर

सहयोग
जागोरी समूह

चित्रांकन
बिंदिया थापर (मुखपृष्ठ)
नीलम

प्रकाशन
गीता भारद्वाज, जागोरी

वितरण
प्रतिभा गुप्ता

ग्रामीण बहनों की द्विमासिक पत्रिका शिक्षा विभाग, मानव संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा अनुदानप्रदत्त, जागोरी के लिए प्रकाशक सुश्री गीता भारद्वाज सी-54 साउथ एक्सटेंशन-II, नई दिल्ली-110049 के द्वारा प्रकाशित एवं इन्द्रप्रस्थ प्रेस (सी.बी.टी.), 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 में मुद्रित। वितरण कार्यालय, 1, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

इस अंक में

हमारी बात 1

दो गीत

साथिन ठंडी-ठंडी —शांति 2
तीन गज़ की ओढ़नी 2

लेख

गीत गाती चलो —कमला भसीन 3
समाज में नारी का दर्जा —सीमा श्रीवास्तव 7
थेरी गाथा—बौद्ध भिक्षुणियों के गीत —जुही 9
एकल औरत की इन्सानी पहचान 11
जब जागो तब सवेरा —सुनीता ठाकुर 13

कहानी

क्या दीपशिखा बुझ गई? —वीणा शिवपुरी 15
'जागोरी' द्वारा निर्मित सामग्री 17

कविता

मैं लक्ष्मण की उर्मिला नहीं —रेणु 18
साधारण ही सही —सीमा श्रीवास्तव 18
संकल्प —सुनीता ठाकुर 19

क़ानून और अधिकार

ऐतिहासिक फैसले की रोशनी में —वीणा शिवपुरी 21
बलात्कार—क़ानून और सज़ा —सुनीता ठाकुर 24

स्वास्थ्य

डेपो प्रोवेरा : क्या है? —जुही 26
अच्छे स्वास्थ्य के लिए 28
घरेलू नुस्खे 30

हमारा पन्ना

एक अबोध प्रश्न —पुष्पा 31
बच्चे जंगली घास नहीं —सुभद्रा सक्सेना 32
शीला का साहस —रचना तिवारी 34
बेटियों के सपने —जया श्रीवास्तव 36
बंदर मामा 36

साथिन ठंडी-ठंडी

साथिन ठंडी-ठंडी ओस की बूंद का छूना
साथिन धीरे-धीरे पलकों की छांव में आ जा
साथिन धीरे-धीरे प्यार की छांव में आ जा

राहें निहारूं तेरी बाट मैं जोंऊ री
सूनी गली और रात अंधेरी
ये भी कोई मिलना है
ये भी कोई छिपना
साथिन ठंडी...

मैं थक जाऊं साहस तू बंधाये री
तू गिर जाये मैं थाम लूं री
ये भी एक मिलना है
एक दूजी को समझना
साथिन ठंडी-ठंडी...

मन उजियाला मांगे जीवन अंधेरा
घर बाहर क्यों लागे मोहे सूना
काली उलझी रातों में
नया उजाला हम खोजें
साथिन ठंडी-ठंडी...

शांति

तीन गज़ की ओढ़नी

तीन गज़ की ओढ़नी
ओढ़नी के कोने चार
चार दिशाओं का संसार
आ-आ-आ ऽ ऽ ऽ

कोठरी के चार कोने
हर दो कोने बीच दीवार
कोने पे दीवार खड़ी
ऊं-ऊं-ऊं ऽ ऽ ऽ

दीवार बना है घूंघट
घूंघट अन्दर है घुटन
घुटन भरी है ज़िन्दगी
आ-आ-आ ऽ ऽ ऽ

ओढ़नी है ज़िन्दगी
ज़िन्दगी है ओढ़नी
ओढ़नी आ आ आ
ज़िन्दगी ऊं ऽ ऊं ऽ ऊं ऽ
ओढ़नी आ ऽ आ ऽ आ ऽ

('अलारिपु की एक नाटक वर्कशॉप में लिखा गीत)

गीत गाती चलो

(महिला आन्दोलन में गीत-संगीत)

चलो आओ बहनों हम मिलकर गायें
हम नूतन मानव के सर्जन की कथा सुनायें
जहां समानता, न्याय और मानवता हो
जहां नारी पे पुरुष का एकाधिकार ना हो
हम ऐसा समाज बनायें

गीत-संगीत ज़्यादातर लोगों की ज़िन्दगी का अहम हिस्सा है। खासतौर पर वे लोग जो गुंथे हुए समुदायों में और प्रकृति के करीब रहते हैं। ऐसे समुदायों में आमतौर पर मौखिक सांस्कृतिक परम्पराएं तथा जीवन का ढंग ग़ैर साक्षर होता है। प्रायः ऐसे ही समुदायों में (जो दक्षिण एशिया में अधिकांश रूप से है) लोग गाते हुए दिखलाई पड़ते हैं। दूसरों का मनोरंजन करने के लिए नहीं, बल्कि अपने सुख-दुख व्यक्त करने के लिए, ईश्वर या प्रकृति के प्रति धन्यवाद व्यक्त करने या त्यौहार मनाने के लिए गाते हैं। उनके लिए गाना सांस लेने की तरह है, जीने के लिए जरूरी इन समुदायों में आज भी सूरज उगने से पहले पीसती हुई औरतें गाती सुनाई देती हैं। खेत में पौधा लगाती हुई या फसल काटती हुई औरतें गाती हैं। बच्चे के जन्म पर गाती हैं, शादियों में गाती हैं और मेलों-त्योहारों पर गाती हैं।

इन समुदायों में आमतौर पर गाना एक सामूहिक गतिविधि होती है, इसके ज़रिए उनकी सामुदायिक पहचान बनती है। सामुदायिक रूप से गाने के जरिए समुदाय की भावना मज़बूत होती है। एक दूसरे के साथ मिलकर, तालमेल से गाने से एकता बढ़ती है। इसीलिए आधुनिक समूह भी सामूहिक गायन का इस्तेमाल करते दीखते हैं। आधुनिक लोग भी चर्चों, मन्दिरों और मठों आदि में मिलकर गाते हैं। बालचर लड़के और लड़कियां, साम्यवादी, राष्ट्रवादी, गांधीवादी तथा हरे राम हरे कृष्ण के भक्तजन यहां तक कि रोटरी व लॉयन्स क्लब के सदस्यों के भी अपने गीत हैं जिनके द्वारा वे अपना विश्वास प्रकट करते हैं और सामुदायिक भावना मज़बूत करते हैं।

ताक़तवर माध्यम

गीत, सम्प्रेषण का ताकतवर माध्यम रहे हैं। उनका इस्तेमाल पारम्परिक विचारों के साथ साथ ग़ैर-पारम्परिक विचारों के प्रसार के लिए भी किया गया है। कई समुदायों द्वारा रामायण और महाभारत की कथा गाते रहने के कारण ये महाकाव्य ज़िन्दा रहे। सूफी सन्तों ने शब्दों का सहारा लेकर धार्मिक ढकोसलों व कट्टरता की निन्दा की,

आध्यात्म, मानवता, सहनशीलता और प्रेम की बात की। सैकड़ों साल बीत जाने पर भी बुल्लेशाह, शाहहुसैन, अमीर खुसरो, रहीम और कबीर के गीत लाखों लोगों की ज़बान पर हैं। किसी एक व्यक्ति ने शायद उन्हें बनाया हो लेकिन वे सबके होते हैं। उन्हें सभी पालते व संभालते हैं और बदले में वे सभी को पालते हैं, सशक्त करते हैं।

हौलीवुड या बम्बई फिल्म उद्योग के गीत, एच.एम.वी. या अन्य कम्पनियों के गीत व्यक्तिगत सम्पत्ति हैं। वे बोतलबंद पानी की तरह हैं जिसकी हर बूंद के लिए पैसे देने पड़ते हैं। ये गीत मुनाफ़ा कमाने की चीज हैं। वे सार्वजनिक संपत्ति नहीं हैं।

गीतों से औरतों का जुड़ाव

जैसे कि आदिवासियों, किसानों और कामगार वर्गों के जीवन में, मध्यवर्ग तथा उच्चवर्ग से अधिक गाना और नाचना है वैसे ही हर समुदाय की औरतों के जीवन में पुरुषों से अधिक गीत-संगीत होता है। "विकास" और "शिक्षा" के चलते ऐसा लगता है कि नाचने गाने को लोगों के जीवन से निकालकर अलग डिब्बे में बंद कर दिया जाता है। संस्कृति जीवन का हिस्सा न रहकर एक स्वतन्त्र वस्तु बन जाती है जिसके लिए अलग वक्त और जगह मुक़र्रर कर दी जाती है। चूंकि औरतें कम "विकसित" और कम "शिक्षित" हैं और अपने समुदाय की संस्कृति व परम्पराओं को ज़िन्दा रखने की ज़िम्मेदारी भी उनकी होती है इसलिए जहां-जहां मर्दों ने गाना छोड़ दिया है औरतें अब भी गाती हैं। मिसाल के लिए शहरी मध्यवर्गीय परिवारों की औरतें शादी व त्योहारों पर इक्ट्ठा हो कर गाती हैं। वे धार्मिक गीत-भजन गाने में भी हिस्सा लेती हैं। जबकि इन परिवारों के मर्दों के लिए गाने के न तो मौके हैं और न ही अब गाना आता है।

औरतों ने गीतों का इस्तेमाल न सिर्फ़ पूजा, उत्सव या अपनी खुशी दर्शाने के लिए किया है बल्कि अपना दुख, गुस्सा और घुटन ज़ाहिर करने के लिए भी किया है। इसकी झलक दक्षिण एशिया के कई लोकगीतों में मिलती है जो उनके दुख के बारे में, गिरे हुए दर्जे या अपना कोई घर न होने के बारे में हैं। कई गीतों में खराब और दबाने वाली सासों के प्रति गुस्सा है। कई गीतों में औरतें बेदर्द, शोषणकारी पतियों, देवरों और जेठों को खूब लताड़ती हैं। कुछ गीतों में औरतों की दबाई गई यौनिकता, अधूरी तमन्नाएं झलकती हैं। वे औरतों के प्यार, पहचान और अपनी जगह पाने के अधूरे सपनों को अभिव्यक्त करते हैं।

औरतों द्वारा गीत रचने और गाने की परम्परा हमारे इतिहास में बहुत पुरानी है। उदाहरण के लिए बौद्ध भिक्षुणियों के 'थेरी गाथा' गीत दो हजार साल से भी पुराने हैं। इन गीतों से पता चलता है कि ढाई हज़ार साल पहले भी बुद्धिमान, सशक्त, मज़बूत इरादों की सक्षम औरतें थीं जो अपना लक्ष्य पाने के लिए कदम उठाने से नहीं झिझकती थीं। इन गीतों से हमें उन औरतों की सामाजिक, धार्मिक जीवन में सक्रिय होने की इच्छा का पता चलता है। आने वाली सदियों में भी औरतों की लिखी कविताओं और गीतों की ऐसी ही मिसालें मिलती हैं। मीरा बाई के गीत आज भी लोगों के चित्त में बसे हुए हैं तथा उत्तरी भारत में बहुत लोकप्रिय हैं।

महिला आन्दोलन में गीतों का इस्तेमाल

स्वतन्त्रता आन्दोलन, समाजवादी आन्दोलन जैसे सभी जन आन्दोलनों की तरह गीत भारतीय महिला आन्दोलन का भी अटूट हिस्सा रहे हैं। सारे देश में औरतों ने अनेक गीत रचे हैं और गाए हैं। मेरे अनुभव के अनुसार ये गीत हमारे संघर्ष और हमारी एकता से फूट पड़ते हैं। उन्हें "दूसरों को जागरूक करने के इरादे से" शायद ही कभी लिखा गया हो। "हम" और "वे" का भेद यहां बिल्कुल नहीं है। गीत लिखने वाली और गाने वाली सभी उसी आन्दोलन का हिस्सा हैं।

मैं कई सालों से औरतों व बच्चों के लिए व उनके साथ गीत लिखती आई हूं। मुझे संगीत के सुरों का खास ज्ञान नहीं है। हालांकि बचपन में सीखे कई लोकगीत जानती हूं और जब गीत गाने वाले लोगों के साथ होती हूं तो नए गीत भी ज़ल्दी ही सीख लेती हूं। मैं लोकप्रिय लोकगीतों तथा फ़िल्मी गीतों की धुनों पर फिट बैठने वाले गीत रचती हूं। इन गीतों का विषय कुछ भी हो सकता है, जैसे औरतों के खिलाफ हिंसा, अन्यायी क़ानून व क़ानूनी व्यवस्था, घरेलू काम का बोझ या ढांचागत समायोजन कार्यक्रम तथा कामगार औरतों पर उसका असर। गीतों का विषय बहनापे की खुशी या एक न्यायी समाज का सपना भी हो सकता है।

मेरे सभी गीतों के लिए विचार और प्रेरणा आन्दोलन से ही मिलती है। ये गीत किसी कार्यशाला में महसूस किए गए अपनेपन से जन्मे हैं या बहस की गहराई और संघर्ष की गर्मी से पैदा हुए हैं। मैं अपने चारों ओर डूबते उतराते विचारों और शब्दों को पकड़कर गीतों में पिरो देती हूं। मैं जटिल विश्लेषण को सरल शब्दों में ढालने की कोशिश करती हूं। उसके साथ भावनाओं और उमंगों को जोड़कर रूखे-फीके विश्लेषण को एक सशक्त वक्तव्य का रूप देती हूं। गीत लिखे जाने की प्रक्रिया दूसरों के साथ बांटती हूं और कई बार तो वह पूरी तरह बदल जाता है। औरतें भी इन गीतों को बदलती हैं। अपनी ज़रूरतों और वातावरण के अनुसार उसमें घटाती या जोड़ती हैं।

एक मौखिक संस्कृति में, जहां याददाश्त ही सबसे अच्छा पुस्तकालय है, गीतों का माध्यम बहुत प्रभावकारी साबित होता है। मेरे जैसी मध्यवर्गीय औरत को, जिसकी मौखिक व लिखित संस्कृति है सैंकड़ों गीत याद हैं। मैं अपने दिमाग़ पर ताज्जुब करती हूं जब मुझे बचपन में सुने कई ऐसे गीत याद आ जाते हैं जिनकी जानकारी से भी मैं अनजान थी। इस तरह से कोई और चीज याद रखना, चाहे वह भाषण हो या आंकड़े या और कुछ, बहुत मुश्किल है। हम नए गीतों को दो चार बार गाते हैं और फिर वे सालों याद रहते हैं। गीतों में बुने गए संदेश, विचार और मूल्य बड़ी आसानी से एक से दूसरे तक पहुंचते हैं। वे बार-बार दोहराए भी जाते हैं, परन्तु सबसे अच्छे गीत भी तभी असरदार होते हैं जब एक समुदाय हो, बहनापे की भावना हो और गीतों के विचारों से सहमति हो। गीत उतने ही सफल होते हैं जितने उन्हें रचने और इस्तेमाल करने वाले लोग आन्दोलन या संगठन सफल होते हैं।

कॉलेज के दिनों में मैंने होली पर गीत लिखना शुरु किया था (जब हम पैरोडी बनाकर एक दूसरे के साथ हंसी किया करते थे) ऐसे ही गीत हम विदाई या खेल स्पर्धाओं के समय रात के उत्सव (कैम्प फायर) में गाया करते थे। ये गीत आमतौर पर तुरन्त लिखी गई पैरोडियां होते थे जिन्हें झटपट दोस्तों को सिखाकर सबके आनन्द के लिए प्रस्तुत किया जाता था। सन् 1978 में बंगलादेश के गोनोशास्थ्य केन्द्र में मैंने एक दक्षिण एशियाई कार्यशाला आयोजित की थी जिसके दौरान मेरे पहले गीत ने जन्म लिया।

तोड़ तोड़ के बन्धनों को, देखो बहनें आती हैं
ओ देखो लोगों, देखो बहनें आती हैं
आएंगी जुल्म मिटाएंगी
वो तो नया ज़माना लाएंगी

अब जब मैं इसके बारे में सोचती हूं तो लगता है कि यह गीत सिर्फ़ इसीलिए संभव हो पाया क्योंकि मैं गोनोशास्थ्य में हज़ारों देहाती औरतों द्वारा किए जा रहे आश्चर्यजनक और उत्साहवर्धक काम के सम्पर्क में आई, उसे देख सकी। उन महिला कार्यकर्ताओं की ऊर्जा और उत्साह, उनके नज़रिए की रचनात्मकता ने हम सबको बांध लिया था। ऐसा लगने लगा था कि औरतें दुनिया की शक्ल बदल देंगी और यही सब उस गीत में था। आगे लिखे जाने वाले गीतों का मूल भी कार्यशालाओं, अभियानों और खास मुद्दों पर संघर्षों में ढूंढा जा सकता है। मिसाल के लिए 1979 में दिल्ली में महिला समूह दहेज मृत्यु के मुख्य मुद्दे पर काम कर रहे थे। हममें से कुछ उस नुक्कड़ नाटक समूह के सदस्य थे जिसने एक नाटक रचकर जगह-जगह दिखाया कुछ गीत इस दौरान दहेज के मुद्दे के चारों ओर लिखे गए।

सेवा, लखनऊ के कार्यकर्ताओं के साथ की गई एक कार्यशाला में औरतों के ख़िलाफ़ हिंसा का

(क्रमशः पृष्ठ 20 पर)

गीत गाती चलो (पृष्ठ 6 का शेष भाग)

मुद्दा उठा। कार्यशाला में हिस्सा लेने वाली लगभग 35 प्रतिशत औरतों ने अपने पतियों और परिवार के अन्य सदस्यों के हाथों भोगी गई हिंसा के विभन्न रूपों की रोंगटे खड़े कर देने वाली कहानियां सुनाईं। इस कार्यशाला दौरान एक के बाद एक तीन गीत जन्मे। चूंकि हम लखनऊ में थे जहां की हवा में ग़ज़ल और कव्वालियां गूंजती है मैंने इन्हीं की धुनों का इस्तेमाल करते हुए गीत लिखे। एक गीत इस प्रकार था।

कौन कहता है जन्नत इसे
हमसे पूछो, जो घर में फंसे

सन् 1984 में राजनीतिज्ञों के भड़काए हत्याकांडों में सबसे भयंकर हत्याकांड दिल्ली ने देखा। हम सबके सामने एक मुद्दा उठा धार्मिक कट्टरता तथा राजनीतिज्ञों द्वारा धर्म का इस्तेमाल। तभी से धार्मिक कट्टरता तथा औरतों पर उसका प्रभाव महिला आन्दोलन के एजेन्डा पर रहा है। इस मुद्दे से जुड़े अनेक गीत लिखे गए। मिसाल के लिए–

भोले लोगों को बहकाया झूठे धर्मों ने।
देश को बंटवा रहे हैं राम तेरे नाम पे।

चूंकि हममें से कई चेतना जागृति और शिक्षा से जुड़ी थीं, कई गीत हमारी नई चेतना की खुशी में लिखे गए, पितृसत्तात्मक रिवाजों और शिक्षा को चुनौती देने और नई जानकारी पाने की हमारी कोशिशों के बारे में लिखे गए।

धीरे धीरे आई हममें चेतना
अब रुकेंगे ना किसी भी हाल, आ गई चेतना
अब पूछेंगे हम खूब सवाल, आ गई चेतना

अनेक महिला दिवसों पर औरतों के जुड़ाव, उनकी एकता को लेकर उमंग भरे गीत लिखे गए। हमें नए मिले आत्मविश्वास के बारे में, न्यायी और समानता पूर्ण परिवार और समाज के हमारे सपनों के बारे में गीत लिखे गए।

अपना दिन हम मनाएं, तो बड़ा मज़ा आए
इसे त्योहार बनाएं, तो बड़ा मजा आए

महिला आन्दोलन द्वारा उठाए गए अन्य मुद्दे जिन पर मेरे भीतर से गीत फूट पड़े वे थे बालिका का दर्जा, पितृसत्तात्मक कानून और कानून व्यवस्था, औरतें व काम, औरतों की राजनीतिक भागीदारी, नई आर्थिक नीति, शराबखोरी, बालश्रम, पर्यावरण, महिलाओं के मुद्दों पर अध्ययन आदि। ये गीत हमारे सामूहिक विश्लेषण से जन्मते हैं और इस विश्लेषण को दूसरों तक पहुंचाते हैं।

ज़्यादातर इन गीतों में औरतों को शिकार या मौन रहकर दुख भोगने वाली के रूप में नहीं देखा गया है। उन्हें हर दुख से मज़बूत होकर उभरने वाली, के रूप में देखा गया है, ऐसी औरत जो निरन्तर ग़रीबी और अपमान के साथ जीने को तैयार नहीं है, जो बेहतर दुनिया बनाने के लिए संघर्ष कर रही है।

मुझे हमेशा महिला आन्दोलन में हंसी-खुशी और मज़ाक की ज़रूरत भी महसूस हुई है। हमारा संघर्ष कठिन और लम्बे समय तक चलने वाला है तो क्यों न हम इस सफ़र को मज़ेदार बनाएं। उदास गंभीर चेहरों में कोई मज़ा नहीं है। इसलिए मैंने अपने कई गीतों में मज़ाक, हल्का फुल्का अंदाज और शरारत का भी इस्तेमाल किया है। एक दो गीतों में तो हम खुद पर और अपने आन्दोलन पर हंसे हैं।

कमला भसीन

(अगले अंक में जारी)

समाज में नारी का दर्जा

विश्व युवक केन्द्र, नई दिल्ली में 23-24 अक्तूबर 1996 को आयोजित लिंग प्रशिक्षण कार्यशाला की रिपोर्ट पर आधरित एक लेख

पिछले दिनों विश्व युवक केन्द्र में एक कार्यशाला आयोजित की गई, जिसमें कार्यकत्ताओं द्वारा समाज के विभिन्न वर्गों से कुछ ख़ास मुद्दों पर बात की गई जैसे:-

1. समाज में मूल सत्ता (स्त्री और पुरुष में) किसके हाथ में है और कोई भी निर्णय लेने का अधिकार किसे है।
2. समाज में महिलाओं की क्या स्थिति है और उन्हें कितने अधिकार प्राप्त हैं।
3. समाज में स्त्री की क्या पहचान है। क्या उसका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व है?
4. समाज में महिलाओं की स्थिति और समस्याओं के लिए कौन ज़िम्मेदार है।

इस बातचीत से यह उभर कर आया कि स्त्रियों की पहचान मां, बहन, बेटी, पत्नी से ज़्यादा नहीं होती। पुरुष के नाम के बल पर उसका स्थान निर्धारित होता है या फिर समाज और परिवार में दी गई भूमिकाओं के आधार पर। एक पत्नी की पहचान उसके पति के बराबर नहीं होती है। वास्तव में सामाजिक दृष्टिकोण यह है कि स्त्री, पुरुष की निजी सम्पत्ति है और उसका समाज में दूसरा दर्जा है।

आर्थिक दृष्टि से भी महिलाएं स्वतन्त्र नहीं है। पैसे के लिए वह पुरुष पर निर्भर हैं। समाज में अर्थ संबंधी सभी निर्णय पुरुषों द्वारा ही लिए जाते हैं। और जहां पुरुष न हो तो निर्णय बुजुर्ग औरतों के हाथ में होता है। अतः औरत का आर्थिक सहयोग में हाथ होते हुए भी उसकी पहचान हमेशा पुरुषों से कम आंकी जाती है। यह अन्तर समाज में व्याप्त धर्मविधा में रचा-बसा है।

समाज कहता है 'औरत ही औरत की दुश्मन है।' 'महिलाओं में ईर्ष्या की भावना होती है।' वास्तव में यह सोच ही औरतों के आपस की दूरी का कारण बनती है। यदि हम ऐसे विश्वासों को ढोते रहेंगे तो हमारी समझ कभी उभर नहीं सकती है। अतः इन सोचों का आधार क्या है यह देखना बहुत जरूरी है।

आर्थिक निर्णय लेने का अधिकार पुरुषों को

है। दहेज में मांगे गए स्कूटर सास नहीं चलाती। यदि कोई औरत अपनी जन्मजात बेटी को मारती है तो इसके पीछे समाज दोषी है, न कि वह मां। औरत समाज की निन्दा के भय से, निजी पीड़ा के भय से (कि जो स्वयं उसने झेला है वही उसकी बेटी भी झेलेगी) बालिका-शिशु की मृत्यु का कारण बनती है।

धन ही नहीं परिवार के किसी भी विषय पर निर्णय लेने का अधिकार पुरुष को ही प्राप्त होता है। यह कड़वा सच ही है कि लड़की के जीवन में 'शादी' जैसे अहम् प्रश्न पर भी उसे कोई निर्णय लेने की आज़ादी नहीं होती। गांवों और पिछड़े वर्गों में यह स्थिति और भी ख़राब है।

गांवों में आज भी बाल-विवाह पर बल दिया जाता है। इसके पीछे कारण है यह भय कि लड़की कुंवारेपन में ही मां न बन जाए। उसके साथ कुछ ग़लत न हो जाए, जिससे परिवार की बदनामी हो। वास्तव में हमारे समाज में लड़की माता-पिता, खानदान की इज़्ज़त का प्रतीक मानी जाती है। यहां उस किशोरी के भविष्य व स्वास्थ्य की कोई चिन्ता नहीं होती।

सवाल यह उठता है कि महिलाओं के आपसी झगड़े की जड़ क्या होती है? जो अधिकार भावना महिलाओं में होती है वही पुरुषों में भी होती है लेकिन 'पुरुष, पुरुष का दुश्मन होता है।' यह बात सुनने में नहीं आती। वास्तव में कभी ज़मीन, तो कभी जायदाद और राजनीति में पुरुष अक्सर लड़ते रहते हैं। कौन अच्छी और बुरी औरत की परिभाषा देता है? यह जानना बहुत ज़रूरी है। यदि औरतों का आपस में बुरा रिश्ता होता है तो इससे फ़ायदा कौन उठाता है?

सम्बन्धों की दृष्टि से देखें तो कुछ महिलाओं को समाज द्वारा परिवार में सम्मानित पद प्रदान किया गया है जैसे सास, ननद, जेठानी। सास अपनी बहू पर अधिकार का भाव रखती है। वह इस अधिकार का ग़लत इस्तेमाल भी करती है। यह दुर्व्यवहार ही पितृसत्ता की भावना को सहयोग देता है। अतः यह समझना ज़रूरी है कि वास्तव में कौन दुश्मन होता है। न मर्द, न औरत बल्कि वह पितृसत्ता जिसे हम नासमझी से, स्वीकार लेते हैं, एक धर्म और संस्कृति के नाम पर।

यह भी देखा जाता है कि समाज में औरतों के घरेलू कामों को कोई दर्जा नहीं दिया जाता। औरत के घरेलू कार्य को 'कुछ नहीं' के रूप में ही स्थान दिया जाता है। उन्हें घर के हर मामले से अलग रखने की कोशिश की जाती है। उसकी सलाह को नज़रअन्दाज़ किया जाता है। एक पितृसत्तात्मक समाज से मिले सहज संस्कारों के रहते महिलाएं अपनी सत्ता या पहचान के प्रति भी जागरुक नहीं नज़र आती हैं।

यहां तक कि गांवों में भी जब औरतें पंचायत प्रधान के रूप में आगे आती हैं तो उनकी मर्दों द्वारा आलोचना ही होती है। औरत पितृसत्ता से इतनी जकड़ी है कि वह अपने अधिकारों के मूल्य को भी खो देती है। पुरुष के सुझाव से ही वह हर काम करती है चाहे वह गांव की प्रधान ही क्यों न हो।

अतः आवश्यकता है इस पितृसत्ता से लड़ने की जिसने लिंग भेद के बीज रोप कर स्त्रियों के मूल्य को गिरा दिया है। □

सीमा श्रीवास्तव

(गीता भारद्वाज की रिपोर्ट पर आधारित लेख)

थेरी गाथा

बौद्ध भिक्षुणियों के गीत

बौद्ध धर्म के बारे में हम सब जानते हैं। बौद्ध भिक्षुणियों के बारे में भी सुना है। आज इन भिक्षुणियों के गीतों के बारे में बात करेंगें। इन गीतों को कहते हैं "थेरी गाथा"। थेरी यानी भिक्षुणी। गाथा यानी गीत। थेरी गाथा यानी बौद्ध भिक्षुणियों के गीत।

थेरी गाथा औरतों की लगन और दिमागी जागरूकता का बखान है। इसकी बातें और भी ज्यादा सच्ची और आकर्षित करती हैं जब मालूम होता है कि इसके गीत पच्चीस सौ साल पहले रूढ़िवाद और संस्कारों की चार-दीवारी में रहने वाली औरतों द्वारा गाए गए थे।

थेरी गाथा औरतों की पहली साहित्यिक रचनाओं में से एक है। पर इसके गीत साहित्य के रूप में नहीं उभरे। गौतम बुद्ध के समय से मुंह-ज़बानी सुने गए। 80 ई०पू० में बौद्ध ग्रंथ त्रिपिताका में। पहली बार लिखे गए। यह ग्रंथ पाली भाषा में था। इसे ओला की पत्ती पर लिखा गया। आज थेरी गाथा दुनिया की बेहतरीन रचनाओं में गिनी जाती है।

साहित्य में समाज की झलक दिखाई देती है। थेरी गाथा के गीत 2500 साल पहले के बारे में बताते हैं। उस समाज में भी औरतें थीं। होशियार और सक्षम औरतें। मज़बूत इरादों वाली। जो चाहतीं हासिल करके रहतीं। मुश्किलों का डटकर सामना करतीं। ये औरतें बौद्ध धर्म मानती थीं। दीक्षा लेनी वाली कुछ औरतें ब्राह्मण परिवारों से भी थीं। गीतों के ज़रिए अपने अनुभव बांटती। थेरी गाथा के इन्हीं गीतों से हम इन औरतों के बारे में जान पाते हैं।

बौद्ध धर्म में पहली बार औरतों को दीक्षा दी गई। पर शुरू से ही ऐसा नहीं था। पहले यह अधिकार सिर्फ़ पुरुषों तक ही सीमित था। महाप्रजापति गौतमी के कहने पर ही गौतम बुद्ध ने औरतों को दीक्षा देना मंज़ूर किया। गौतमी राजकुमार सिद्धार्थ की सौतेली मां थी। राजकुमार सिद्धार्थ ही बाद में गौतम बुद्ध के नाम से जाने गए। हालांकि बुद्ध पहले गौतमी की बात मानने को राज़ी नहीं हुए। पर गौतमी ने भी संघर्ष करना नहीं छोड़ा। आख़िरकार बुद्ध ने उनकी बात मान ली। गौतमी ने दूसरी औरतों को दीक्षा देने का अधिकार भी हासिल किया।

प्रमुख थेरिओं को दूसरी औरतों को दीक्षा देने का अधिकार था। इन्होंने बहुत-सी औरतों को दीक्षा दी। इनमें से कुछ औरतों ने अर्हत बनने पर खुशी के गीत गाए। थेरी गाथा में इकहत्तर थेरियों के गाए पांच सौ गीत हैं।

थेरी गाथा में एक और बात हमारे सामने आती है। वह है औरतों के लक्ष्य पाने के मज़बूत इरादे। जैसे प्रजापति गौतमी दीक्षा लिए बग़ैर चैन से नहीं बैठीं। तारिका को उनके पति ने चोला धारण करने नहीं दिया। तब वह अपना रोज़ाना का काम चुपचाप करने लगी। हारकर उनके पति खुद उन्हें संघ में छोड़ आए। इसी तरह सुमेघा ने अपने मां-बाप और मंगेतर की

बात नहीं मानी। शादी के लिए हां नहीं की। तब उन्हें अपनी मर्ज़ी करने की इजाज़त मिली।

थेरी गाथा में औरतों को निचला दर्जा शायद ही कहीं दिया हो। इसी दासी के गीत में औरतों की घरेलू ज़िन्दगी के बारे में विस्तार से बताया गया है। इसी दासी रुढ़िवादी बाह्मण परिवार से थी। सास-ससुर और पति की सेवा करने में ही उनका जीवन बीता था। वैसे भी ग़रीब वर्ग की औरत को रोज़मर्रा के काम से पीछा छुड़ाना मुश्किल ही था। सुमंगला माता की कहानी भी कुछ ऐसी ही है। बर्तन-भांडों की देखभाल में वह पति का हाथ बंटाती थीं।

ऐसा नहीं कि औरतें सुकून की ज़िंदगी नहीं गुज़ारती थीं। उच्च वर्ग की औरतें ऐसा कर पाती थीं। रानियां-राजकुमारियां बाग-बगीचों में अपना वक्त बिताती थीं। सुजाता की कहानी से पता चलता है। उच्च वर्ग की औरतें अपनी सखियों के साथ वाटिका में घूमने जाती थीं। एक दिन वाटिका से लौटते समय सुजाता ने बुद्ध को देखा। तब उनके प्रवचन सुनने के लिए वह रुक गई।

दीक्षा लेने से औरतों को कुछ हद तक आज़ादी मिली। पर मर्दों के बराबर का दर्जा उनको नहीं मिला। इसके काफ़ी उदाहरण हैं। जैसे दीक्षा लेने के लिए कुंवारी लड़की को पिता की, और शादी-शुदा को पति की इजाज़त लेनी पड़ती थी। भिक्षुणियों की पहचान का भी सवाल था। वे अक्सर अपने बेटों के नाम से जानी जाती थीं। जैसे अभय माता (अभय की माता) और सुमंगला माता (सुमंगला की माता)।

काफ़ी बार औरतों को मजबूरी में भी दीक्षा लेनी पड़ती थी। ऐसा इसलिए क्योंकि शादी से पहले ही उसका मंगेतर गुजर गया हो। अभिरुपा नंदा और जेंता की कहानियां कुछ ऐसी ही मिसालें हैं। उनके घरवालों ने उन्हें मनहूस समझा और दीक्षा लेने पर मजबूर किया। इसके बावजूद भी दोनों ने संघ में धर्म का सबसे उच्च लक्ष्य प्राप्त किया।

कुछ औरतों ने दीक्षा लेने के बाद किसी विशेष क्षेत्र में नाम कमाया। जैसे धम्मादीना और सुखव ने धर्म के प्रचार में महारत हासिल की। उप्पलावना थेरी चमत्कार करने के लिए जानी जाती थीं। कुछ लोगों को विश्वास ही नहीं होता था कि औरतें भी इस तरह से चमत्कार कर सकती हैं। सोमा के गीत से यह बात साफ़ होती है। जब उससे पूछा गया, "अपने दो इंच के दिमाग़ से ऋषि-मुनियों जैसी शक्ति औरतें कैसे हासिल कर सकती हैं?" उसने जवाब दिया, "दिमाग़ अनुशासित हो तो औरत होना रुकावट कैसे हो सकता है?"

थेरी गाथा औरतों की लगन और दिमाग़ी जागरुकता का बखान है। इसकी बातें और भी ज्यादा सच्ची और आकर्षित लगती हैं। जब मालूम होता है कि इसके गीत, पच्चीस सौ साल पहले, रूढ़िवाद और संस्कारों की चारदीवारी में रहने वाली औरतों द्वारा गाए गए थे। □

जुही द्वारा अनुदित

(साभार-विमेन एंड मीडिया कलेक्टिव कोलंबो)

एकल औरत की इन्सानी पहचान

परित्यक्ता संस्कृत का शब्द है जो ग़रीब, अनपढ़ छोड़ी हुई गांव की औरतों के लिए प्रयोग में आता रहा है। पीड़ादायक होने पर भी यह 'टाकलेल्या' (छोड़ी हुई) शब्द के सम्बोधन से अच्छा है—क्योंकि वो सुनकर लगता है जैसे औरत कोई सिगरेट का छोड़ा हुआ टुकड़ा हो और अकेली औरत शब्द उनकी सच्चाई नहीं क्योंकि गांवों में कितनी औरतें एकदम अकेली रहती हैं?

'परित्यक्ता' शब्द उनकी सच्चाई—उनकी माली हालत का बयान करता है—पति द्वारा छोड़ी औरत, घर भेज दी गई औरत, बग़ैर किसी ज़मीन या जायदाद के अधिकार के—न मैके न ससुराल में। वो मज़बूर है रोज़ की दिहाड़ी पर जीने के लिए, अपने बच्चों को खुद पालने के लिए और बार-बार भाइयों की देहरी से बाहर निकलने के लिए। इन औरतों के हालात हिन्दुस्तानी औरत के सही दर्जे को सामने लाते हैं। पितृसत्तात्मक जाति और वर्ग की परिभाषाओं से घिरे परिवार के दायरे में वो या तो आदमी पर निर्भर हैं—या बेघर, बेज़मीन, बेआधार हैं। पर आज वो अपने आर्थिक आधार और सामाजिक अधिकार की नई लड़ाई लड़ रही हैं। एक नया आर्थिक आंदोलन शुरू कर रही हैं। उनकी संख्या बढ़ती जा रही है जो शायद महिला कार्यकर्त्ताओं की धारणा और जानकारी से परे है। 1987 में जब सर्वे शुरू किया तो हर गांव में एकल औरतों की संख्या बीस से पचास के बीच में थी। इस हिसाब से हर तालुक़ में हज़ारों, प्रान्त में लाखों और देश में करोड़ों एकल औरतें हैं। साथ ही उनका संघर्ष भी फैल रहा है।

1988 में समता आंदोलन और स्त्री मुक्ति संघर्ष, चलवल द्वारा आयोजित सम्मेलनों से आगे अब धरनों, पदयात्राओं और अनगिनत कोर्ट कचहरी और सरकारी दफ़्तरों में लड़ाईयों के दौरान एकल औरतें अपने आंदोलन को बढ़ा रही हैं। वो लड़ रही हैं राशनकार्ड के लिए, घर की मुखिया का दर्जा पाने के लिए, घरों और ज़मीनों के लिए, रोज़गार और कचहरियों में न्याय के लिए।

आज एकल औरत का संघर्ष महाराष्ट्र में महिला आंदोलन का अहम हिस्सा बन गया है जहां हर महिला संगठन ने किसी न किसी रूप में इस मुद्दे को उठाया है। समाजवादी व वामपंथी पार्टियों के महिला संगठनों ने भी एकल औरतों के सम्मेलन आयोज़ित किए हैं। समता आंदोलन ने बम्बई में 'परित्यक्ता मुक्ति यात्रा' की है। शेतकारी महिला अगाड़ी का मानना है कि एकल औरत को उसके नाम से ज़मीन दिलाने से कम से कम मर्दों के लिए औरतों को छोड़ना इतना आसान नहीं होगा। इन सब आयामों से गुज़रते हुए परित्यक्ता औरतों का संघर्ष बहुत सशक्त जगह पहुंच गया है। ग़रीब से ग़रीब, अकेली औरतें इन्सानी पहचान की लड़ाई लड़ रही हैं—अकेले रह पाने की गुंजाइश को बढ़ा रही हैं। □

—महाराष्ट्र में चल रहे एकल औरतों के संघर्ष की झलक।

मैं हंसना चाहती हूं

महिलाओं का एक समूह प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र पर जुटा था। कुछ के सिर खुले थे, कुछ के ढके, कुछ थोड़ा घूंघट डाले थीं। पूछने पर कि वह क्यों पढ़ना चाहती हैं, एक ने कहा–"मैं चिट्ठी लिखना-पढ़ना चाहती हूं।" दूसरी ने कहा–"मैं अपना नाम लिखना, साइन करना चाहती हूं। अंगूठा लगाने में शर्म आती है।" तीसरी ने कहा–"मुझसे हिसाब किताब में कोई धोखा-धड़ी न कर सके।" एक युवती जिसका थोड़ा-सा ही मुंह घूंघट से दिखाई दे रहा था बोली–"मैं हंसना चाहती हूं।" और यह कहकर वह खिलखिलाकर हंस पड़ी। क्या सिर्फ़ यही कारण पढ़ना-लिखना सीखने के लिए काफ़ी नहीं है?

साभार–अनौपचारिका

पर लगा लिए हैं हमने

(आओ मिलजुल गायें)

पर लगा लिये हैं हमने
अब पिन्जरों में कौन बैठेगा जरा सुन लो
जब तोड़ दी हैं ज़न्जीरें
तो कामयाब हो जायेंगे ज़रा सुन लो
खड़े हो गये हैं मिल के
तो हमको कौन रोकेगा ज़रा सुन लो
दीवारें तोड़ दीं हमने
अब खुलकर सांस लेगें ज़रा सुन लो
औरों की ही मानी अब तक
अब खुदी को बुलन्द करेंगे ज़रा सुन लो
देखो सुलग उठी है चिन्गारी
अब जुल्मों की शामत आई है ज़रा सुन लो
मर्दों के बनाए क़ानून
अब हमको मंजूर नहीं ज़रा सुन लो

("उड़ें जब जब जुल्फें" की धुन पर)

कमला भसीन

जब जागो तब सवेरा

हमारे समाज में नारी की पिछड़ी हुई स्थिति का मुख्य कारण उसका पुरुष पर निर्भर होना है। दूसरे, लड़कियों में शुरू से ही पिता, भाई का भय बैठा दिया जाता है जो जीवन के अन्त तक बना रहता है। जीवनभर वह पिता, भाई, पति, पुत्र के क़ानूनों में ख़ुद को बांधे रखती है। ऐसे संस्कार उसमें भर दिए जाते हैं कि अन्याय के विरोध की शक्ति उसमें आ ही नहीं पाती। तमाम दुख, पीड़ा, कष्ट सहकर देवी बनने की कोशिश में वह एक आज़ाद जीवन कभी जी ही नहीं पाती। आख़िर ऐसा क्यों है?

सच्चाई क्या है?

औसतन लोगों का यही मानना है कि स्त्री के दुखों का कारण स्वयं स्त्री वर्ग होता है। मां अपनी बेटी को आदर्शों और मर्यादाओं की दुहाई देती है। वह कभी उसके पढ़ने-लिखने आज़ाद जीवन की तरफ ध्यान देना पसन्द नहीं करती। लड़की पढ़ रही है तो ठीक है, नहीं तो भी ठीक है। 'कौन सा पढ़-लिखकर कलक्टरी करनी है।' आज भी यही मानसिकता समाज में फैली है। दूसरे उसे शुरू से ही 'सास के जाएगी तो क्या करेगी' का डर दिखाया जाता है। नतीजन लड़की के दिमाग में सास और ससुराल की 'कुरुक्षेत्र' वाली छवि बन जाती है। जहां उसे अपने जीवन का महाभारत लड़ना होता है। हर बहू सास में दोष ढूंढती है और हर सास बहू से अपना हिसाब चुकता करती नज़र आती है। तो औरतों के ये आपसी झगड़े उनके विकास में सबसे बड़ी बाधा हैं। ज़रूरत इस बात की है कि आप काम-धंधे में मन लगाएं, कुछ पैसा कमाएँ ताकि परिवार और बच्चों का भविष्य बेहतर बने और इसके लिए ज़रूरी है पढ़ना-लिखना। तभी आप किसी भी काम को बेहतर ढंग से समझते हुए करके, अपनी मेहनत का सही फल पा सकेंगी।

सबसे पहले तो यह समझ लेना होगा कि पुरुष स्त्री का भाग्यविधाता नहीं है। न ही वह उसका देवता है। जीवन और गृहस्थी के पालन में

वह उसके साथी से अलग कुछ नहीं है। वह भी उसी मिट्टी का बना है जिससे स्त्रियां। उसमें भी वही कमजोरियां हो सकती हैं जो एक इंसान में होती हैं। पुरुष पैसा कमाकर लाता है सिर्फ इसलिए वह महान है यह गलत है। पुरुष के कमाने से अधिक मेहनत है पूरे परिवार को अच्छी तरह चलाने में। इसके लिए औरतों को अबला, असहाय बनकर रहने की मानसिकता से मुक्त होना होगा।

दूसरी बात बेकार की बातों में समय बिताना फ़िज़ूल है। घर के कामकाज से मुक्ति पाकर पड़ोसिनों की पंचायत जुटाने से अच्छा है कुछ नया करें। दुनिया भले ही चांद पर पहुंच जाए पर आप घूंघट से बाहर न निकलें। अपने व्रत उपवासों से मुक्त न हों, धर्म के घन्टे बजाने से फ़ुर्सत न लें—तो दोष किसका? ज़रूरत है अपनी शक्ति को अपने लिए ख़र्च करने की। कुछ नया करना होगा—ऐसा जो आत्मनिर्भर बना सके।

अन्याय सहना गुनाह

एक बात समझ लेनी होगी। अन्याय करने वाले से सहने वाला ज़्यादा बड़ा गुनहगार होता है। जब तक आप सहेंगी लोग आपका फ़ायदा उठाएंगे। अपने अधिकार के लिए लड़ना सीखिए। समाज से अपना हक मांगिए। क्यों पुरूषों को जन्म देने वाली औरत उसकी दासी की तरह जीने पर मजबूर हो? क्यों वह अपने को कमजोर मानकर दुबकी रहे? बेटी है तो उसे भी आज़ादी से जीने का हक़ है। बहू है तो किसी की दासी नहीं है—उस परिवार का सदस्य है। क्यों वह हर किसी के हुक्म के सामने झुकी रहे?

कामकाजी महिलाओं के सामने भी यही समस्या है। घर की ज़िम्मेदारी भी निभाओ, बाहर की भी। तब भी किसी अधिकार का नाम नहीं क्यों? सिर्फ़ इसलिए कि शान्ति, सुख की तलाश में स्त्रियां झुकती चली जाती हैं। औरत का मौन और उसका समर्पण ही उसकी दुर्दशा का कारण बन जाता है।

इस तमाम स्थिति से उबरने के लिए महिलाओं को अपने आप से ही पूछना होगा कि वह समाज का एक अंग है या बेगार मज़दूर। बेकार की रूढ़ियों, परम्पराओं, बंधनों के नाम पर वह क्यों पिसती रहें। अपने सम्मान और अधिकार के ख़िलाफ़ तनी मुट्ठियों का जवाब वह क्यों न दे।

स्वयं पुरुषों को अपनी मर्दानगी का अहंकार छोड़ना होगा। उसे एक सहयोगशील साथी की भूमिका निभानी होगी। ख़ासकर इस मंहगाई के दौर में जब दोनों का कमाना लाजमी हो जाता है। तब उसे पारिवारिक दायित्वों के पालन में समान भागीदारी रखनी होगी।

यह समझ लेना चाहिए कि 'स्त्री पुरुष की दासी' के जमाने लद गए। ख़ुद महिलाओं को बेटी, बहू, सास, मां के खेमों से निकलकर एकजुट होना होगा। उन्हें मर्दों के इस समाज, मर्दों की राजनीति, मर्दों के धर्म में अपनी पहचान बुलंद करनी ही होगी। □

सुनीता ठाकुर

क्या दीपशिखा बुझ गई?

(दीपा मुरम् के बलात्कार और मौत की सच्चाई)

23 अगस्त 1996 को पटना के अखबार में खबर छपी। "बलात्कार की शिकार प्रसव के बाद मरी।" इस छोटी सी खबर के पीछे लम्बी कहानी है। विश्वासघात की कहानी। न्याय के लिए संघर्ष की कहानी। हिम्मत और साथ ही दमन की कहानी।

दीपशिखा जली

दीपा, बिहार राज्य के जमुई जिले के एक गांव की आदिवासी लड़की थी। उसका परिवार ग़रीब लेकिन शिक्षित था। जमुई में साक्षरता अभियान चला। प्रचार के लिए सांस्कृतिक दल बना। दीपा उसकी खास कलाकार थी। जोश और हुनर से भरपूर। वह कार्यक्रमों में हिस्सा लेने यहां-वहां जाती रहती थी। साथ होते थे डी.आर.डी.ए. के निदेशक के.के. सिंह और बी.डी.ओ. रविन्दर सिंह। वे दीपा को बेटी कहते। दीपा उन्हें आदर देती। उनका विश्वास करती। 27 नवम्बर 1995 को कार्यक्रम के बाद के.के. सिंह ने दीपा को बी.डी.ओ. के घर ठहराया। वहां बी.डी.ओ. की बहन और पूरा परिवार था। दीपा अपना घर समझ कर रात वहीं रुकी।

विश्वास की हत्या

अगले दिन भी कार्यक्रम के बाद दीपा वहीं आई। उसके पेट में दर्द था। खाने के बाद वह नींद की गोली लेकर सो गई। गहरी नींद से आंख खुली तो दीपा ने देखा बी.डी.ओ. उसके साथ बलात्कार कर रहा था। उसके चीखने से पहले ही मुंह बंद कर दिया गया। दीपा रोती रही। उसने सिर्फ़ यही पूछा "क्या इसके लिए ही मुझे बेटी कहकर यहां लाए थे?"

घर जाकर मां को सब कुछ बताया। मां को विश्वास नहीं हुआ। शर्म और मानसिक आघात की वज़ह से दीपा ने इस घटना की रपट नहीं लिखाई। मन में गर्भ के ठहरने का डर भी समाया हुआ था। फरवरी 1996 को महिला डाक्टर को दिखलाया। दीपा को गर्भ ठहर गया था। अब तो दो ही रास्ते थे। या तो गर्भपात करा ले या दोषी को सज़ा दिलाए।

एक लम्बी लड़ाई

दीपा ने अधिकारियों को इस बारे में पत्र लिखे। किसी ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। दीपा ने एफ.आई.आर. दर्ज कराने का फ़ैसला किया। दीपा को मालूम था स्थानीय थाने में उसकी कोई सुनवाई नहीं होगी। वह हिम्मत करके पटना पहुंची। मुख्य मंत्री से मिलने की कोशिश की। बहुत मुश्किलों व इन्तजार के बाद मुख्य मंत्री से मिल पाई। उसने लिखित शिकायत की अर्जी उन्हें दी। वहां शिक्षा मंत्री मौजूद थे। उन्होंने दीपा को चरित्रहीन साबित करने की कोशिश की। औरत के ख़िलाफ यह भी पुरुषसत्ता का एक हथियार है।

मुख्यमंत्री ने जांच का आदेश दिया। वह पुलिस संरक्षण में जमुई लौटी। उसकी डाक्टरी जांच हुई तथा गर्भ साबित हुआ। उससे पूछताछ हुई लेकिन नतीजा कुछ न निकला। उसके बाद शुरू हुआ एक लम्बा संघर्ष। जो दीपा की मौत तक चलता रहा। दीपा ने मंत्रियों, अधिकारियों को दर्ज़नों पत्र लिखे। पर कोई मदद न मिली। इसके बावजूद दीपा ने तय किया कि वह बच्चे को जन्म देगी। उसने अपनी डायरी में एक जगह लिखा था–

"इस बच्चे को क्यों मारूं? यह तो निर्दोष है। जिसे मरना चाहिए वह तो बी.डी.ओ. है।"

जचगी का समय आया। पास के अस्पताल से कोई मदद न मिली। बच्चा घर में हो गया लेकिन आंवल न निकली। बड़ी मुश्किलों से गाड़ी करके उसे प्राइवेट डाक्टर के पास ले गए। डाक्टर ने बग़ैर जांच किए दो सुइयां लगाने को कह दिया। सुइयां लगीं और दीपा आखिरी बार बोली "मां, खतम"

और दीपा खतम हो गई।

मां का कहना है, दीपा की मौत में डाक्टर का हाथ था। परिवार ने खूब भागदौड़ की। तीन दिन तक लाश घर में रखी पर पुलिस ने कोई कार्यवाही नहीं की। हार कर दीपा को दफ़ना दिया गया। मिट्टी और पत्थरों के ढेर के नीचे दीपा सो रही है, लेकिन अशान्त। उसे इन्साफ़ नहीं मिला।

दीपशिखा बुझी

दीपा एक खास लड़की थी। जिन्दगी से भरपूर। वह गाना गाती, कविताएं लिखती, खेलों में हिस्सा लेती। वह बहुत कुछ करना चाहती थी। कुछ बनना चाहती थी। शायद एक दिन वो यह सब कर पाती। शायद एक दिन वो आदिवासी लड़कियों के लिए दीपशिखा बनती। लेकिन सब ख़त्म कर दिया एक पुरुष ने जिसे सहारा दिया एक व्यवस्था ने। दीपा अपने पीछे छोड़ गई है अपनी कविताएं, कहानियां, डायरियों में लिखे विचार। लेकिन सबसे बड़ी चीज़ छोड़ गई है–कुछ जलते हुए सवाल। उन सवालों के जवाब ढूंढने की हम सबकी लड़ाई। क्योंकि दीपा की कहानी, उसके सवाल हर औरत के हैं।

– क्या अकेली लड़की के लिए सुरक्षा नहीं है?
– क्या सरकारी कामों से जुड़ी औरतें असुरक्षित हैं?
– क्या पुलिस और न्याय व्यवस्था औरत के ख़िलाफ़ हैं?
– क्या अधिकारी, मंत्री, शासन व्यवस्था पितृसत्तात्मक हैं?
– क्या समाज, आदिवासी और उस पर जागरुक औरत को आगे बढ़ने नहीं देगा?
– क्या आधी जनता को न्याय नहीं मिलेगा? □

वीणा शिवपुरी

(स्वतंत्र जांच दल की रपट पर आधारित)

'जागोरी' द्वारा निर्मित सामग्री

जागोरी औरतों का एक ट्रेनिंग, कम्यूनिकेशन व डॉक्यूमेन्टेशन सेन्टर है जो कि 1983 से औरतों से संबंधित मुद्दों जैसे हिंसा, स्वास्थ्य, क़ानून, नई आर्थिक नीति, व जेण्डर संवेदनशीलता आदि पर काम कर रही है। इनमें से एक मुख्य काम है सामग्री प्रकाशित करना।

उसी के तहत जागोरी ने अभी 'औरत और साक्षरता' पर आधरित तीन पोस्टरों के एक सेट का प्रकाशन किया है। पहले भी हमने यह पोस्टर निकाला था, लेकिन अभी उसे नया रूप व आकार दिया है। इस एक सेट की कीमत 30 रुपये है।

इसी कड़ी में जागोरी ने 5 ऑडियो कैसेट का सेट भी तैयार किया है जिसमें महिला आंदोलन, धर्म साम्प्रदायिकता, पर्यावरण, साक्षरता, पंचायती राज, वोट, शराबबंदी आदि मुद्दों से संबंधित गाने हैं। दो गानों की किताबें 'आओ मिलजुल गायें' व 'संघर्षों से उभरे गीत' भी हैं। जिसमें यह सभी गाने शामिल हैं। इस ऑडियो कैसेट सेट की कीमत 155 रुपये है। यदि आप इनकी प्रतियां मंगाना चाहें तो निम्न पते पर संपर्क करें तथा इनकी राशि अग्रिम रूप में हमे भेजें। □

जागोरी
सी-54 साउथ एक्सटेंशन भाग-II
नई दिल्ली-110049
फोन-6427015, 6453629

मैं लक्ष्मण की उर्मिला नहीं...

मैं आंसू नहीं बहाना चाहती
एक छितराए मानचित्र पर
घुलना नहीं चाहती
मूर्ति के दीए की तरह,
अब और नहीं पिघल सकती मैं
किसी सेविका के कक्ष में
एक भूली हुई मोमबत्ती की तरह,
और न ही खुद को शलभ की भांति
न्योछावर करना चाहती व्यर्थ की लपट में,
क्योंकि
मैं लक्ष्मण की उर्मिला नहीं
जिसने धैर्य की मौन प्रतिमा बन
काट लिए अनवरत् प्रतीक्षा में
चौदह वर्ष वनवास के,
मुझे अब इस अकेली प्रतीक्षा की
कोई शेष चाह नहीं,
मैं तो वह नदी हूं
जो गरजते समुद्र की ओर
नहीं दौड़ना चाहती
बहना चाहती है चुपचाप
अपने लक्ष्य की ओर।

रेणु

साधारण ही सही...

वेग पांवों में भर
जब-जब दौड़ना चाहा
एक टोक-सी लगी तब-तब
कि थम! ज़रा धीरे चल
कि तेरे नसीब में यह उड़ान नहीं
कि तू एक औरत है।
औरों के लिए त्याग में 'रत्'...
अचानक!
एक सवाल कौंधा मन में–
कैसी परिभाषा यह त्याग की?
स्वेच्छा से कर दे पीठ नंगी–
मार खाने को
उसकी ओर
जननी है जिसकी?
स्वयं के हाथों आहुति दे दे–
अपनी इच्छाओं की?
लगा दे बेड़ियां
अपने विचारों पर?
है तभी वह आदर्श नारी?
नहीं
नहीं होना मुझे
सुनहरा पन्ना
नपुंसक इतिहास का।
रहने दो
वही 'साधारण औरत'
जो पहचान सके–
अस्मिता अपनी
राह संघर्षमय ही सही।

सीमा श्रीवास्तव

संकल्प

जला ही तो सकते हो
रोक नहीं सकते
मैं कुन्दन बन निकलूं तो...
तुम
सारथी बन मेरे
खींच ही तो सकते हो
सूत्र मेरी गति के
रोक नहीं सकते
मैं दिशाओं को गुन लूं तो...
तुम चाहोगे
धुरियों को मेरी उधेड़ना
तोड़ नहीं सकते हो
कोई निर्णय गर ठन लूं तो...
आओ
तुम्हारे नाम लिखकर
एक सन्धिपत्र मैं
अपने हाशियों में
तुम्हारा भी नाम जोड़ दूं...
कि मुझे
ठान नहीं लेनी है तुमसे
चलना है तुम्हारे साथ
एक सफ़र तक
एक सफ़र के लिए
ज़िन्दगी के नाम।

सुनीता ठाकुर

ऐतिहासिक फैसले की रोशनी में

(छेड़छाड़ और बलात्कार के विषय में)

रूपन देउल बजाज तथा के.पी.एस. गिल के मुक़दमे का हाल का फ़ैसला एक ऐतिहासिक फ़ैसला है। भारतीय महिला आन्दोलन के लिए अहम जीत है। इससे यह भी साबित होता है कि बरसों की कोशिशों के बाद मानवीय अधिकारों की गूंज अदालतों तक पहुंची है।

मुक़दमे के तथ्य

18 जुलाई, 1988 को चंडीगढ़ में एक औपचारिक दावत थी। जहां पंजाब पुलिस के महानिदेशक गिल और उच्च प्रशासनिक अधिकारी रूपन मौजूद थे। रूपन ने गिल पर आरोप लगाया कि उन्होंने रूपन के साथ यौन छेड़छाड़ की। अगले दिन रूपन तथा उनके पति ने सरकार से गिल के बर्ताव की शिकायत की। गिल से माफ़ी मांगने के लिए कहा गया। लेकिन इस मामले को किसी ने ज़्यादा महत्व नहीं दिया। रूपन ने पुलिस में गिल के व्यवहार की शिकायत दर्ज़ कराई। पंजाब सरकार ने रपट को दबा दिया। दस साल के संघर्ष के बाद उच्चतम न्यायालय के आदेश पर गिल के ख़िलाफ़ कार्यवाही शुरू हुई।

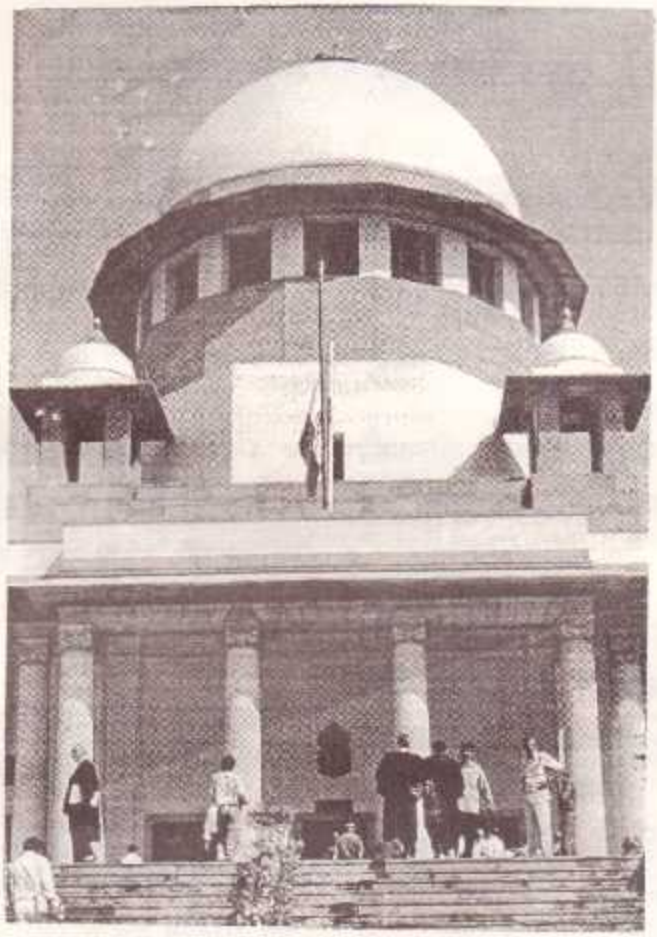

आठ महीने की अदालती कार्यवाही के बाद न्यायाधीश दर्शन सिंह ने अपना फ़ैसला सुनाया। गिल को धारा 354 (शील हनन) के तहत तथा धारा 509 (ज़ोर या धमकी का इस्तेमाल तथा महिला के अपमान के लिए यौनिक संकेतों का इस्तेमाल) के तहत दोषी करार दिया।

सजा-धारा 354 के तहत तीन महीने की सश्रम क़ैद और 500 रुपये जुर्माना। धारा 509 के तहत दो महीने की सामान्य क़ैद और 200 रुपये जुर्माना। गिल को इस फ़ैसले के खिलाफ़ अपील करने की आज्ञा थी।

आठ साल का इतिहास

शुरू से इस मामले के प्रति लोगों का रवैया मज़ाकिया था। अधिकांश मर्दों ने इसे ज़्यादा से ज़्यादा ओछा व्यवहार माना,

लेकिन जुर्म कदापि नहीं। इसकी सज़ा के तौर पर भी माफी मांगना पर्याप्त समझा गया। क़ैद की सज़ा का यह फ़ैसला लोगों को चकित कर गया। ख़ासतौर पर संचार माध्यमों के लेखों और संपादकीयों में इस पर टिप्पणी की गई। इस सारी प्रतिक्रिया के पीछे एक बात मुख्य थी। गिल जैसे व्यक्ति को क़ैद कैसे दी जा सकती है। पंजाब में आतंकवाद को खत्म करके उसने देश की सेवा की है। वह राष्ट्र का नायक (हीरो) है।

इस मुकदमे के फ़ैसले तथा उस पर मिली प्रतिक्रियाओं पर विचार करना ज़रूरी है। कुछ सम्पादकों ने अपने अख़बारों में नारीवादियों को चेतावनी भी दी। वे इस फ़ैसले को अपनी जीत समझकर खुशी से न उछलें। इस मुकदमे को मध्यवर्गीय औरतों के मुद्दे के रूप में उछाला गया।

यह भी कहा गया कि ग़रीब औरतों की कहीं अधिक गंभीर समस्याएं ध्यान देने को पड़ी हैं।

इस फ़ैसले के चलते रूपन ने सरकार की पितृसत्तात्मक सोच और परम्परा को तोड़ा है। औरत का शरीर उसका अपना है। जो बग़ैर उसकी मर्जी के कुर्बान नहीं किया जा सकता।

सोच विचार करें

यह सही है कि यह फ़ैसला औरतों की जीत है। फिर जीत को जीत क्यों न कहें। यह जीत इसलिए है कि–

- पहली बार अदालत में माना गया है कि अपने शरीर पर औरत का हक़ उसका बुनियादी मानवीय हक़ है।
- यह भी स्वीकार किया गया है कि चाहे बलात्कार हो या "कूल्हे थपथपाना" दोनों औरत की मानवीय गरिमा पर हमला हैं। उसके हक़ का हनन है। सज़ा कम या ज़्यादा हो सकती है लेकिन दोनों जुर्म हैं।
- यौन छेड़छाड़/शोषण भी एक राजनैतिक मुद्दा है। चाहे पति पत्नी को या पिता बेटी को या अधिकारी अपनी महिला अधीनस्थ को सताए, बात एक ही है। उसके पीछे का मुद्दा एक ही है।
- औरतें इसी बात पर आन्दोलन करती आई हैं कि यौन उत्पीड़न जुर्म है। मर्दों को यह हल्की फुल्की बात लगे पर औरतों के लिए यह एक जुर्म है जिसे अब वे बर्दाश्त नहीं करेंगी।
- आतंकवाद के ख़िलाफ़ इस्तेमाल किए जाने वाले हिंसात्मक तरीकों का दूसरा रूप है औरतों के ख़िलाफ़ हिंसा। ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। चूंकि उसने देश के लिए बड़ा काम किया है इसलिए औरत के साथ छेड़छाड़ को माफ किया जा सकता है।
- इसी सोच के तहत युद्ध के दौरान सैनिकों द्वारा किए गए बलात्कारों को नज़रअन्दाज़ किया जाता रहा है। चाहे वह श्रीलंका में भारत की शान्ति सेना हो या बागलादेश में पाकिस्तानी फौज़ें। दूसरे महायुद्ध के दौरान जापान में तो इसी मकसद के लिए सैनिकों को औरतें दी जाती थीं।

यानी मेहनत करके थके हुए सैनिक के शरीर को आराम देने के लिए औरत के शरीर के इस्तेमाल को जायज़ माना जाता रहा है।

आज इस फ़ैसले के चलते रूपन ने सरकार की

पितृसत्तात्मक सोच और परम्परा को तोड़ा है। औरत का शरीर उसका अपना है। जो बगैर उसकी मर्जी के कुर्बान नहीं किया जा सकता।

उसके ख़िलाफ़ हिंसा, बुनियादी हक़ों का हनन है। इसलिए क़ानून के तहत जुर्म है।

सारांश

औरतों के खिलाफ हिंसा का मुद्दा बीजिंग के कार्यवाही मंच का अहम् सरोकार है। यह मानवीय गरिमा और समानता की भावना के ख़िलाफ़ है। इसके चलते औरतें सभी क्षेत्रों में समान भागीदारी नहीं कर सकतीं। यह परिवार समाज और देश की तरक्की के रास्ते में रोड़ा है।

रूपन और गिल के मामले को मध्यवर्गीय शहरी औरत का मामला नहीं समझा जाना चाहिए। यह हर कामकाजी औरत का मामला है। एक स्तर पर यह भंवरी के मामले से जुड़ता है। काम की जगह पर यौन शोषण को पेशेवर खतरा मानकर तुरन्त कार्यवाही होनी चाहिए। मुलज़िम या जिस संस्था के लिए वह काम करता है उसे हज़ानि लिए ज़िम्मेदार ठहराया जाना चाहिए। □

वीणा शिवपुरी
(वसन्था कन्नाबिरन तथा कल्पना कन्नाबिरन के अंग्रेजी लेख पर आधारित व अनुदित)

बिन मांगे कोई हक़ न मिलेगा
बिन खोले कोई दर न खुलेगा

बलात्कार–क़ानून और सज़ा

क़ानून की भाषा में बलात्कार तब होगा जबकि:

1. स्त्री की इच्छा के ख़िलाफ़ संभोग किया जाए।
2. उसे डरा धमकाकर सम्भोग के लिए राज़ी किया जाए।
3. धोखा देकर स्त्री के साथ शारीरिक सम्बन्ध बनाए जाएं।
4. दिमाग़ी तौर पर कमज़ोर या पागल स्त्री से संभोग किया जाए।
5. नशे की स्थिति में महिला के साथ शारीरिक सम्बन्ध बनाए जाएं।
6. सोलह साल से कम उम्र की लड़की के साथ किया हुआ संभोग भी बलात्कार कहा जाएगा। चाहे वह उसकी मर्ज़ी से हुआ हो या मर्ज़ी के खिलाफ़।

यदि कोई पुरुष इन स्थितियों में किसी स्त्री के साथ संभोग करता है तो:-

उसे भारतीय दण्ड संहिता की धारा 376 के तहत बलात्कार के लिए उसे कम से कम सात साल की सज़ा दी जा सकती है जो बढ़ाकर दस साल या उम्र क़ैद भी की जा सकती है। यदि वह गर्भवती हो जाती है तो बलात्कारी को कम से कम 10 साल की सज़ा होगी।

यदि कोई पुरुष 12-16 वर्ष के बीच उम्र वाली अपनी पत्नी से ज़बरदस्ती या उसकी मर्ज़ी से संभोग करता है तो भी वह बलात्कारी माना जाएगा। ऐसे व्यक्ति को क़ानून दो साल की सज़ा या जुर्माना या फिर दोनों सज़ाएं हो सकती हैं।

12 वर्ष से कम उम्र की लड़की के साथ किए गए बलात्कार के लिए कम से कम दस साल की सज़ा होगी।

बलात्कार होने पर क्या करें:-

1. पहने हुए कपड़े न धोएं, न ही बदलें और न ही नहाएं।
2. दोस्त, परिवारजन, पड़ोसी या संगी-साथी को बताएं।
3. तुरन्त पुलिस को सूचना दें। अपने गांव या इलाके के ज़िम्मेदार व्यक्ति को साथ लेकर रिपोर्ट दर्ज करवाएं।
4. ज़ल्द से ज़ल्द अपनी डाक्टरी जांच कराएं व रिपोर्ट लें।

क़ानून सभी की रक्षा करता है। ज़रूरत इस बात की है कि महिलाएं जागरुक हों। बलात्कार किसी लड़की या औरत के लिए शर्म की बात नहीं है। यह उस समाज के लिए शर्मनाक बात है।

कोई भी लड़ाई अकेले नहीं लड़ी जा सकती। वह भी भ्रष्ट समाज और शासन के रहते। इसलिए खुद महिलाओं को एकजुट होकर कस्बा-कस्बा, गांव-गांव अपनी शक्ति बढ़ानी होगी। एकता में ही शक्ति होती है और एकजुट होकर ही हम अपना हक़ आसानी से पा सकते हैं। □

सुनीता ठाकुर

मिलजुलकर नए कानून बनाएं
हक़ बराबर के सबको दिलाएं
कोई आधा न पाये
तो बड़ा मज़ा आए
कोई ज़्यादा न पाए
तो बड़ा मज़ा आए।

आओ बहन एक हो जाएं
बलात्कारी के ख़िलाफ़ आवाज़ उठायें।

डेपो प्रोवेरा : क्या है?

अभी नॉरप्लांट का ख़तरा पूरी तरह से टला ही नहीं था कि सरकार ने खतरनाक गर्भ-निरोधक इंजेक्शन डेपो-प्रोवेरा औरतों को लगाने के आदेश जारी कर दिए। महिला संगठनों ने इसके ख़िलाफ़ प्रदर्शन करने का फ़ैसला किया। नारे और प्रदर्शन के शोर-शराबे के साथ इस आदेश को वापस लेने की माँग रखी गई।

डेपो-प्रोवेरा है क्या?

डेपो-प्रोवेरा यानी डेपो मेडरॉक्स प्रोजेस्टरॉन ऐसिटेट अमरीका की अपजॉन कम्पनी ने बनाया है। यह एक इंजेक्शन के रूप में औरतों को बांह में लगाया जाता है। हर तीन महीने के अंतराल पर लगाया जाने वाला यह इंजेक्शन बच्चा ठहरने नहीं देता। यानी एक बार लगवा लेने पर औरतों को तीन महीने तक आराम। पर यह किस कीमत पर? हमारे शरीर और सेहत के बदले?

डेपो-प्रोवेरा यानी डेपो मेडरॉक्सी प्रोजेस्टरॉन ऐसिटेट अमरीका की अपजॉन कम्पनी ने बनाया है। यह एक इन्जेक्शन के रूप में तीन महीने पर लगाया जाने वाला इंजेक्शन है जो बच्चा ठहरने नहीं देता।

भारत में अब सरकार ने यह इंजेक्शन लगाने की छूट दे दी है। पर अभी तक भारत में इस निरोधक का परीक्षण नहीं किया गया है। यानी हम यह नहीं जानते कि इसको लगाने से हमें क्या फ़ायदे और नुकसान हैं। हमारे शरीर में क्या-क्या तकलीफ़ें हो सकती हैं। हमारे आगे होने वाले बच्चों पर इसका क्या असर होगा और हम इस्तेमाल के बाद दोबारा गर्भ-धारण कर भी पाएंगे या नहीं। पर हम दूसरे देशों से सबक ले सकते हैं।

एक ख़तरनाक शुरुआत

अमरीका में 1992 तक डेपो-प्रोवेरा इंजेक्शन औरतों को लगाने की अनुमति नहीं दी गई थी। मालूम चला था कि यह गर्भ निरोधक सुरक्षित नहीं था। इसलिए विकसित होने के पच्चीस सालों बाद भी यह आम गर्भ निरोधकों की तरह बाज़ार में उपलब्ध नहीं था। है न आश्चर्य की बात, जिस देश ने यह तैयार किया वहीं यह इस्तेमाल नहीं हो रहा था?

सन् 1960 में अपजॉन कम्पनी ने कुत्तों पर सात साल तक और दस साल तक बन्दरों पर इस इंजेक्शन का परीक्षण किया था। लगाने के साढ़े तीन महीने के बीच ही कुत्ते मर गए। कारण दवा के तेज असर से बच्चेदानी की दीवारें जल गई थीं। इन कुत्तों को कैंसर, मधुमेह आदि बीमारियां भी थीं। कम्पनी ने तब कहा कि कुत्तों पर होने वाले परीक्षण इंसानों पर ठीक नहीं बैठते। बंदरों में भी बच्चेदानी का कैंसर हो गया था।

इसके बावजूद भी विकासशील देशों जैसे थाईलैंड, जमैका, न्यूज़ीलैंड, दक्षिण अफ्रीका में इसका परीक्षण ज़ारी रहा। आंकड़ों से पता चला है कि दुनिया भर की छह करोड़ औरतों

को यह इंजेक्शन एक साल में दिया जाता है।

हमारे शरीर पर हमला

इनमें से कुछ औरतों से पता चला है कि इसको लगवाने के बाद उन्हें काफ़ी परेशानियां उठानी पड़ रही हैं। सत्तर प्रतिशत औरतों को ज़्यादा खून जाने, बार-बार माहवारी होने, लगातार माहवारी होने जैसी तक़लीफ़ हैं। जब इंजेक्शन नहीं लगाया जाता तो काफ़ी महीने तक माहवारी बंद हो जाती है। औरतों के 'बांझ' होने का, डिप्रेशन, सरदर्द, ऊंचा रक्तचाप, किडनी और लीवर जैसी बीमारियां भी हो जाती हैं। अगर गलती से गर्भावस्था में यह लगा दिया जाए तो बच्चा विकृत पैदा हो सकता है। दूध-पिलाने वाली मांओं के लिए भी यह ख़तरनाक है। बच्चेदानी और स्तन कैंसर होने की सम्भावनाएं भी बढ़ जाती हैं।

महिला संगठनों का मिला-जुला प्रयास

अधिकांश महिला संगठनों ने मिलकर इसके खिलाफ संघर्ष करने का इरादा किया है। तीन मई को राजधानी में कुछ संगठनों ने एकजुट होकर इस निरोधक के इस्तेमाल की अनुमति वापस लेने की मांग रखी है। भारत सरकार का कहना है कि डेपो-प्रोवेरा का परीक्षण प्राइवेट कम्पनियों द्वारा किया जा रहा है। सरकार का इससे कोई सरोकार नहीं है। पर सभी परीक्षणों की जिम्मेवारी औषधि नियंत्रक की है। इसलिए संगठनों ने एक प्रेस विज्ञप्ति देकर उन पर दबाव डाला है।

हमारा शरीर हमारा हक़

ख़तरनाक गर्भनिरोधक खासकर इंजेक्शन के रूप में दिए जाने वाले औरतों पर दो तरीक़े से वार करते हैं। एक तो यह बिना औरत की जानकारी के किसी और इंजेक्शन की तरह उसको दिया जा सकता है। अनपढ़ हो या पढ़ी-लिखी, उसका स्वास्थ्य और शरीर डाक्टर पर निर्भर हो जाता है। शरीर पर हक़ तो छिनता ही है साथ ही गिरता हुआ स्वास्थ्य भी। भारत जैसे विकासशील गरीब देश में जहां बुनियादी स्वास्थ्य सुविधाएं आम जनता को मुहैया नहीं हो पाती, वहां इन गर्भ निरोधकों से होने वाली बीमारियों के इलाज की अपेक्षा करना बेमानी है। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष और विश्व बैंक के दबाव में आकर सरकार के इन फ़ैसलों का हमें कसकर विरोध करना है। हमें हमारे शरीर को बच्चा पैदा करने वाली मशीन समझने वाली सरकारी नीतियां नहीं चाहिए। हमें आबादी नियंत्रण की राजनीति नहीं चाहिए। हमें चाहिए हमारे तन और मन के प्रति जागरूक, जवाबदेह और संवेदनशील स्वास्थ्य व्यवस्था। □

जुही

देश में गर बेटियां अपमानित हैं नाशाद हैं
दिल पे रख कर हाथ कहिये देश क्या आज़ाद है।

अच्छे स्वास्थ्य के लिए भोजन संबंधी जानकारी

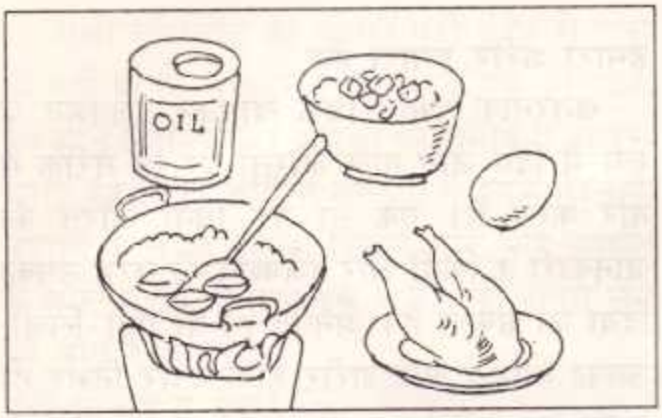

भोजन में तेल व चिकनाई की मात्रा कम रखें।

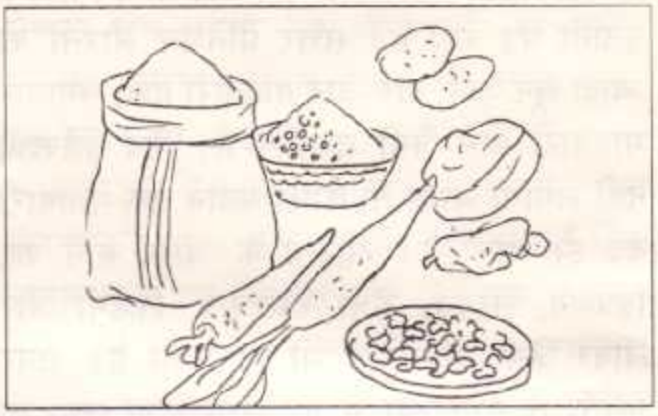

साबुत अनाज, दालें व कन्द-मूल अच्छी तादाद में खायें।

नमक व चीनी के उपयोग में कमी लायें।

नशा व शराब पीना बन्द करें।

खाने में तरह-तरह की चीज़ें लें।

रोज फल व सब्जियां खाएं।

सब्ज़ियां और उनका उपयुक्त सेवन

ताजी सब्ज़ियों का इस्तेमाल करें।

उन्हें ठंडें स्थान पर रखें।

अच्छी प्रकार धोकर फिर काटें।

पहले छिलके उतारें।

बड़े टुकड़ों में काटें।

ढके हुए बर्तन में पकाएं।

उचित मात्रा (कम पानी) में पकाएं।

कम समय में पकाएं।

मूली, गाजर, चुकन्दर जैसी सब्ज़ियों के पत्तों का, भुजिया, दाल, चपाती, सलाद इत्यादि में प्रयोग करें।

पालक में टमाटर डालकर पकाएं।

हरी सब्जियों में थोड़ा घी या तेल डालकर पकाएं।

इन सबसे आपका भोजन गुणकारी होगा। इस प्रकार अधिक से अधिक महत्वपूर्ण पोषक तत्व सुरक्षित रह सकते हैं।

(साभार—न्यूट्रीशन फाउंडेशन ऑफ इंडिया)

घरेलू नुस्खे

आंवले के फायदे

1. आंवला बहुत फ़ायदेमंद फल है। इसमें भारी मात्रा में विटामिन सी होता है। धात की बीमारी और खून की कमी में यह गुणकारी होता है।
2. आधा सीसी सिर के दर्द में आंवले का मुरब्बा या अचार दिमाग़ को तासीर पहुंचाता है।
3. आंवला सुखाकर रीठे के साथ पीसकर बने चूर्ण से बाल धोने से काले घने लम्बे होते हैं।

खाज-खुजली

1. नारियल के तेल में थोड़ा गन्धक मिलाकर लगाएं।
2. नीम के तेल में लगभग एक चौथाई पपीते का दूध मिलाकर लगाएं।
3. खुजली वाले फोड़े-फुन्सियों पर नीम की छाल घिसकर लगाएं।
4. नीम के पत्ते का रस, हल्दी का कंद और नीम का तेल मिलाकर पका लें, तब मलहम बना लें और उसका प्रयोग करें।
5. एक कागजी नींबू का रस लेकर 250 ग्राम नारीयल के तेल में मिलाकर लगाएं।

चेहरे के दाग

1. तुलसी की पत्तियों को गाय के दूध में पीसकर लगाने से चेहरे के काले दाग मिट जाते हैं।
2. केले के पेड़ के भीतर के भाग से जो रस निकलता है, उस रस के लगाने से चेहरे के काले दाग मिट जाते हैं।
3. बादाम की गिरी को दूध में घिसकर लगाएं।

प्याज़ के फ़ायदे

1. लू से बचने के लिए प्रतिदिन प्याज़ खायें।
2. लकवा एवं दिल के मरीज़ों को भी रोज प्याज खिलाना चाहिए।
3. प्याज की गांठ को राख में भूनकर उसके कुनकुने रस को कान में डालने से कान का दर्द ठीक होता है।
4. प्याज का रस तिल के तेल में फेंटकर लगाने से चर्म रोग दूर होता है।
5. तम्बाकू खाने वाले को कभी-कभी प्याज का रस अवश्य पीना चाहिए।
6. प्याज़ को भून कर उसका पेस्ट बनाकर लगाने से फटे हाथ-पांव को काफ़ी राहत मिलती है।

(यदि इन उपायों से फायदा न हो तो डॉक्टर के पास जाएं)

□

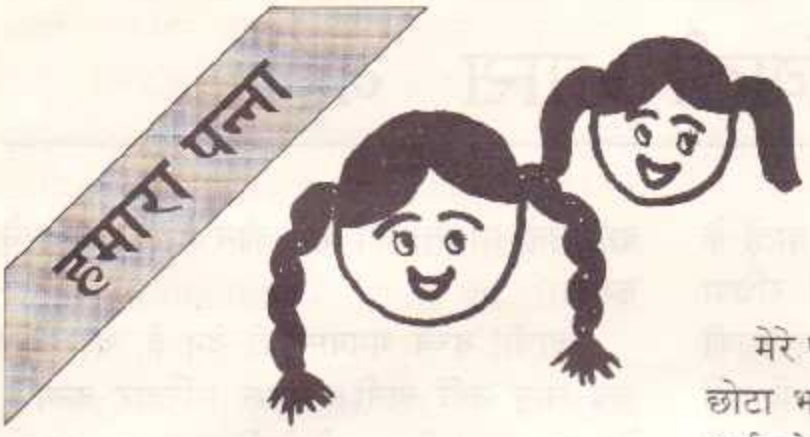

गालियां किसकी हैं?

एक बार गौतम बुद्ध भ्रमण करते हुए एक सेठ के घर पहुंचे और द्वार पर खड़े होकर पानी पिलाने का अनुरोध किया। घमण्डी सेठ ने प्रत्युत्तर में उन्हें गालियां दीं, पर वे चुपचाप आगे बढ़ गए।

सेठ सोच में पड़ गया कि मैंने इस व्यक्ति को इतनी गालियां दीं लेकिन यह फिर भी बिना कुछ कहे चुपचाप जा रहा है। सेठ से रहा न गया और वह दौड़ कर बुद्ध के पास गया और अपनी शंका जताई।

गौतम बुद्ध मुस्कराए और फिर शांत स्वर में बोले, "मान लो, तुमने मुझे एक गाय दी और मैंने उसे लेने से इन्कार कर दिया, ऐसी स्थिति में गाय किसकी होगी?"

सेठ ने तुरन्त उत्तर दिया, "मेरी।"

बुद्ध आगे बोले, "इस प्रकार तुमने जो गालियां मुझे दीं, उन्हें मैंने ग्रहण ही नहीं किया, फिर वे गालियां तुम्हारी हुई या नहीं?"

जवाब सुनकर सेठ लज्जित होकर उनके चरणों में गिर गया।

एक अबोध प्रश्न

मेरे पड़ोस में एक लड़की है। आजकल उसका छोटा भाई पैदा हुआ है। एक दिन उसकी मां भाई को गोद में लिटाकर दूध पिला रही थी। वह भी चुपचाप मां की बगल में बैठ गई। थोड़ी देर बाद मां से बोली कि जब से भाई पैदा हुआ है। तू उसको ही ज्यादा प्यार करती है। मुझे क्यों नहीं? क्या तेरे प्यार पर सिर्फ़ उसका ही हक़ है? क्या तेरी गोद में अब वही बैठेगा?

मां के पास उसके इस बाल सुलभ प्रश्न का कोई जवाब नहीं था।

पुष्पा (जखोली क्षेत्र)
(साभार-रंतरेबार)

बच्चे जंगली घास नहीं

"बड़े-बूढ़े झूठ थोड़े ही बोलते हैं," बातों के बीच रधिया ने हाथ मटकाते हुए कहा। रधिया गांव के मुखिया की घरवाली है। इसलिए उसकी बात का विरोध करने की हिम्मत किसी में नहीं है। कमला अभी-अभी ब्याही आई है। आठवीं पास है। शहर में कुछ दिन मामा के यहां रही थी। वह रधिया की बातों से मन ही मन कुढ़ती है। इस समय भी वह उठ खड़ी होती है।

"कहां जा रही है कमला!" रधिया ने टोका।

"काकी! मुन्ना जाग गया होगा। दांत निकल रहे हैं। दवा देनी है।"

"दांत निकलने में भला दवा क्या देनी। हंसते-खेलते दांत निकल आते हैं। कुछ दिन दस्त आएंगे, बुखार होगा और वह दूध नहीं पियेगा। यह तो होता ही है।"

"नहीं चाची! ज़्यादा दस्त आने से बच्चे के शरीर में पानी की कमी हो जाती है और अतिसार में वह मर भी सकता है। बच्चे के लिए यह बहुत देखभाल का समय है। उसे ज़रूर ऐसी दवा देनी चाहिए जिससे दांत जल्दी और आसानी से निकल आएं। अच्छा चाची! नमस्ते।"

"देखो तो इसका दिमाग," रधिया ने कहा।

सुमन से रहा नहीं गया। बोल ही पड़ी– "चाची! कमला ग़लत नहीं कह रही। पिछले साल सोहन का बेटा और गिरधारी की लड़की दांत निकलने में चल बसे थे।"

"बच्चे भगवान की देन हैं। वही जन्म देता है, वही उन्हें पालता है। हम कौन हैं?" रधिया ने कहा।

"चाची! बच्चे भगवान की देन हैं, यह बात अब लागू नहीं होती। हमारे परिवार कल्याण केंद्र की डाक्टरनी बताती है कि बच्चा जब चाहो तब ही हो।"

"वह कल की छोकरी चार अक्षर क्या पढ़ आई, हमें समझायेगी," रधिया ने मुंह बनाते हुए कहा।

"चाची! औरत भेड़-बकरी नहीं है। वह बच्चे का लालन-पालन करने लायक हो जाए, उसकी सेहत बने, तभी बच्चा होना चाहिए," सुमन ने हंसकर समझाना चाहा।

"तुम लोग जब से गांव में आई हो सबका दिमाग़ खराब कर रही हो। मेरे सात बच्चे हुए थे," रधिया ने गर्व से कहा।

"चाची! तुम्हारे घर में सास, ननद, देवरानी, जेठानी सब थीं। बच्चे पल गये।"

"हां, हां, हमने तो जैसे अपनी छाती का दूध ही नहीं पिलाया," रधिया ने चिढ़कर कहा।

"चाची! सिर्फ दूध पिलाने से बच्चे नहीं पल जाते। हम खेत में बीज डालते हैं, सिंचाई करते हैं। पौधा निकलने पर उसकी देखभाल करते हैं। सोचते हैं आंधी-पानी न आए। ऐसे ही बच्चों के बारे में सोचना होता है।"

"हां भई! मेरे बच्चे तो जंगली घास थे न, यूं ही बढ़ गए," रधिया ने मुंह बिचकाया।

"चाची! बच्चे न भगवान की देन हैं, न वे

अपने आप पल जाते हैं। बच्चे इतने नाजुक होते हैं कि अगर हम उनका ध्यान न रखें तो न जाने कौन-कौन सी घातक बीमारियां लग जाएं, जो पूरी उम्र नहीं जातीं। डाक्टरनी जी कह रही थीं कि डी.पी.टी. के तीन टीके लगवाने से बच्चों को रोग नहीं लगते। काली खांसी, पोलियो जैसी बीमारियां नहीं होतीं।"

"यह बात तो तुम ठीक कह रही हो सुमन! अपने गांव में कितने ही बच्चे काली खांसी के रोगी हैं। बिरजू का लड़का पोलियों की वजह से खटिया पर पड़ा रिरियाता रहता है," रधिया ने बताया।

"चाची! जमुना के लड़के को दिन में भी नहीं दिखाई देता। उसे रतौंधी आती है," विमला बोली।

"चाची! अब बताओ, बच्चे अपने आप पल जाते तो इन बच्चों को रोग क्यों लगते? ये भी और बच्चों की तरह हंसते-खेलते फिरते।" सुमन ने हावी होकर कहा।

"तुम ठीक कहती हो। मैं भी कल सब औरतों से कहूंगी कि डाक्टरनी जी से जांच करवा लो।" रधिया को देखकर सब औरतें खुश थीं। □

सुभद्रा सक्सेना

सबला

गाय और बैल

एक बार एक सींगोंवाला बैल एक बिना सींग वाली गाय को ब्याह लाया। सोचा इससे कोई खतरा नहीं। जैसा मैं चाहूंगा वैसा ही होगा। वह जब तब अपने सींग दिखाकर उसे डराता-धमकाता रहता। पर उससे एक भूल हो गई। दरअसल वह बिना सींगो वाली गाय नहीं थी। एक बछिया थी। बेचारी बछिया हर वक्त सहमी रहती। पर मन ही मन सोचती काश उसके सींग होते तो वह बैल को दिखा देती। उसे यह मालूम नहीं था कि उसके भी सींग निकल सकते थे। उसने खुद को कभी गौर से देखा ही नहीं था।

एक दिन उसने अपनी परछांई को पानी में देख लिया तो हैरानी के साथ-साथ खुशी से उछल पड़ी। उसके भी दो छोटे-छोटे सींग निकल रहे थे। अब तो वह उनके बड़े होने का इंतज़ार करने लगी। अब तक तो वह लाचार खूंटे से बंधी थी। खूंटा तोड़कर भागने की न तो उसमें हिम्मत थी। न ही वह अपने बछड़ों को छोड़ना चाहती थी।

जैसे-जैसे सींग बड़े होते गये उसकी हिम्मत बढ़ती गई। अब उसने अपनी अहमियत समझी। अब खुद को परखा तो पाया कि वह भी दो सीगों वाली गाय बन चुकी थी।

बैल उसके बढ़ते सींग देखकर वैसे ही परेशान था। अब वह अपनी गलती पर पछताने लगा। समझ गया कोई भी गाय बिना सींगो वाली नहीं होती और अब जब गाय अपने सींग दिखाने लगी तो बेचारा क्या करता? समझौता कर लिया।

गाय अब बहुत खुश थी। यह बात वह औरों को भी समझाने लगी। हां, वह गाय मैं ही थी। □

शीला का साहस

शीला अपने माता पिता की इकलौती लड़की थी। उसके तीन भाई थे। तीनों ही पढ़ने में बड़े कमज़ोर और आलसी थे। एक-एक क्लास में दो-दो साल लगाते। हर समय शीला को चिढ़ाते और तंग करे रहते। शीला अपने पिता से कहती लेकिन कोई फ़ायदा नहीं होता। पिता अपने तीनों बेटों को खूब मानते थे। शीला को तो वे हमेशा ही बोझ समझते थे। वे हमेशा कहते कि "अगर शीला भी मेरा बेटा होता तो मुझे दहेज की चिंता तो नहीं करनी पड़ती।" ऐसे समय में शीला की मां अपने पति को समझाती "बेटे-बेटी में आजकल कोई फर्क नहीं होता फिर लेकिन शीला के पिता को कुछ समझ में नहीं आता वे तो कहते थे—"घी के लड्डू तो टेढ़े भी भले होते हैं।"

शीला अपने भाइयों से छोटी थी। वह अब दसवीं क्लास में आ चुकी थी और उसके भाईयों में से कोई नवीं भी पास नहीं कर सका था। शीला के पिता चाह रहे थे कि अब शीला के हाथ पीले हो जाएं। पर शीला आगे पढ़ना चाहती थी। दो दिन बाद लड़के वाले शीला को देखने के लिए आने वाले थे। शीला ने अपनी मां से कहा कि वह अभी शादी नहीं करेगी। कम से कम बारहवीं तक पढ़ेगी।

मां ने पिता को समझाया—"शीला बारहवीं करना चाहती है कर लेने दो। दो साल की तो बात है। फिर अभी तो हमारी शीला बच्ची है। थोड़ा और पढ़ लिख लेगी तो और समझदार हो जाएगी।" पर शीला के पिता नहीं माने। उन्हें तो ज़िद सवार थी। शीला ने भी विरोध किया। उसने अपने पिता से कहा कि अगर उन्होंने ज़बरदस्ती की तो वह पुलिस में रिपोर्ट कर देगी काफी समझाने बुझाने के बाद शीला के पिता ने उसकी शादी दो साल टालने के लिए राज़ी हो गए।

शीला ने दसवीं की परीक्षा दी। उसके अपने स्कूल में सबसे ज्यादा नंबर आए थे। अब उसे वज़ीफ़ा मिलने लगा था। शीला के पिता को अब उसकी पढ़ाई का खर्चा नहीं देना पड़ता था। धीरे-धीरे दो साल भी गुजर गए। बारहवीं की परीक्षा में भी शीला अच्छे नंबरों से पास हुई। उसके भाई तो बिल्कुल ही निकम्मे हो चुके थे। पिता कहते—"सर पर ज़िम्मेदारी आएगी तो सब ठीक हो जाएगा।"

पर शीला के प्रति पिता का रवैया अब भी नहीं बदला था। दो साल बीत चुके थे इसलिए उन्होंने फिर से शीला के लिए लड़के की तलाश शुरू कर दी।

शीला ने इन दो सालों के अपने जेब खर्च के सारे पैसे बचाकर रखे थे। बारहवीं पास की और किताबें खरीदकर तैयारी शुरू कर दी। उसने अपने पिता को इस बारे में कुछ भी नहीं बताया। शीला पढ़ने में तो तेज थी ही उसका पर्चा अच्छा हो गया। कुछ ही समय बाद उसकी शादी हो गई। चार महीने के बाद शीला को परीक्षा में पास होने की खबर अपनी एक सहेली से मिली। शीला ने अपने पति को बताया क्योंकि अब उसे

इंटरव्यू के लिए जाना था। शीला का पति समझदार था। वह भी अपनी पत्नी की काबलियत पर खुश हुआ। शीला इंटरव्यू में पास हो गई। अब वह नौकरी करती थी और बहुत खुश थी।

काफ़ी समय गुजर गया। उसके पिता ने अपने तीनों लड़कों की शादी कर दी। वे कहते थे—"शीला की शादी के बाद हमारा घर तो बिल्कुल खाली हो गया है। उसको तो भरना ही है।"

लेकिन शादी के बाद लड़कों ने अपना-अपना हिस्सा लेकर अपने-अपने अलग घर बसा लिए। अब पिता को कोई नहीं पूछता था। जो थोड़ा बहुत कर्ज उनके ऊपर था उसे भी चुकाने में लड़कों ने सांझा करने से साफ इंकार कर दिया। शीला के पिता को बड़ा सदमा पहुंचा। वे बीमार रहने लगे। खर्चे बहुत थे पर कमाने वाला कोई नहीं। घर की हालत बहुत खराब रहने लगी।

शीला को जब अपने पिता की हालत का पता चला तो वह बहुत दुखी हुई। वह अपने माता-पिता के पास आई। उनसे साथ चलने को कहा। पिता बड़े शर्मिंदा हुए। जिस बेटी को उन्होंने हमेशा बोझ समझा था वो आज उनकी इतनी सेवा कर रही है। उन्हें बेटी के घर जाकर रहना अच्छा नहीं लग रहा था पर बेटी और दामाद के आगे उनकी एक न चली।

अब उन्हें महसूस हो रहा था—"सचमुच बेटे और बेटी में कोई अंतर नहीं है। बल्कि आजकल तो बेटियां ही बेटों के काम करती हैं।" शीला ने यह साबित कर दिया था। □

रचना तिवारी

बेटियों के सपने

मुंह सी के अब जी न पाऊंगी
जरा सब से ये कह दो
मैया कहे बिटिया सीस झुकाना
सर को मैं ऊंचा उठाऊंगी
अपने को अब ना झुकाऊंगी
बाबू कहे बिटिया पढ़ने न जाना
अपना मैं ज्ञान बढ़ाऊंगी
अपना मैं मान बढ़ाऊंगी
भैया कहे बहना चौखट न लांघो
चार दीवारी को गिराऊंगी
पिंजरों से पीछा छुड़ाऊंगी
शास्तर कहें पिता पति हैं स्वामी
अब ना गुलामी कर पाऊंगी
रिश्ते बराबर के बनाऊंगी
दुनिया कहे मुनिया मन की ना करना
अपने मन को ना अब मैं दबाऊंगी
अपने ही सपने सजाऊंगी।

कमला भसीन, जया श्रीवास्तव

बंदर मामा

बंदर मामा पहन पायजामा
दावत खाने आए
पीला कुरता टोपी जूता
पहन बहुत इतराए
बंदर मामा...

रसगुल्ला लप बोले लूं चख
डाला मुंह में गप से
नरम-नरम था बड़ा गरम था
जीभ जल गयी लप से
बंदर...

बंदर मामा फेंक पायजामा
आंसू भर-भर रोए
घर पर पहुंचे थे झल्लाए
बिस्तर पर जा सोए।

आओ अपना नाम लिखें

गांव-गांव के द्वार-द्वार पर
शिक्षा के पैगाम लिखें
मरूभूमि के आसमान पर
सावन के घनश्याम लिखें।
क ख ग घ की नीवों पर फिर
शब्दों के इतिहास रचें
जीवन के कोरे पन्नों पर
आओ अपना नाम लिखें

गोपाल तारे 'निमाड़ी'
(साभार-साक्षरता मिशन)